

भारतीय मानव और उसकी भावुकता

पण्डित मोतीलाल शास्त्री

प्रथम अध्याय

माङ्गलिकम्

१. कः स्विद् वृक्षोनिष्ठितो मध्ये अर्णसो यं तौग्रयो नाधितः पर्यषस्वजत्।

पर्णा मृगस्य पतरोरिवारभ उदशिवना ऊहथुः श्रोमताय कम्॥ ऋक्संहिता १/१८३/७

अर्थ

तुग्रपुत्र ने याचमान होकर जल के मध्य जिस निश्चल वृक्ष का आलिंगन किया था, वह वृक्ष क्या है? अश्विद्वय, तुमने उसे सुरक्षित उठाकर विपुल कीर्ति प्राप्त की है।

२. सम्मश्यमाना अमदन्नभिस्व पयः प्रत्नस्य रेतसो दुघानाः।

वि रोदसी अतपद् घोष एषां जाते 'निष्ठा' मदधुर्गोषु वीरान्॥ ऋक्संहिता ३/३१/१०

अर्थ

अंगिरा लोग अपने गोधन को लक्ष्य करके पहले के उत्पन्न पुत्र की रक्षा के लिए दूध दूहकर हृष्ट हुए थे। उनकी आनन्दध्वनि द्यावा—पृथिवी में व्याप्त हुई थी। पहले की ही तरह वे संसार में अवस्थित हुए थे। गायों की रक्षा के लिए वीर पुरुष को नियुक्त किया था।

३. अध यदिमे पवमान रोदसी इमा च विश्वा भुवनाभि मज्मना।

यूथे न 'निष्ठा' वृषभो वि तिष्ठसे॥

ऋक्संहिता ९/११०/९

अर्थ

सोम जैसे वृषभ गोसमूह में आधिपत्य करता है, वैसे ही तुम अपने बल से द्युलोक, भूलोक और सारे प्राणियों पर राज्य करते हो।

४. वृषभो न तिग्मशृङ्गोऽन्तर्यूथेषु रोरुवत्।

मन्थस्त इन्द्र शंहदे यं ते सुनोतिभावयुः—विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥ ऋक्संहिता १०/८६/१५

अर्थ

५. यदा वै निस्तिष्ठति, अथ श्रद्धधाति। नानिस्तिष्ठन् श्रद्धधाति। निस्तिष्ठिन्नेव श्रद्धधाति। 'निष्ठा' त्वेव विजिज्ञासितव्या।

छान्दो. उप. ७/२०/१

अर्थ

जिस समय पुरुष की निष्ठा होती है तभी वह श्रद्धा करता है, बिना निष्ठा के कोई श्रद्धा नहीं करता, अपितु निष्ठा करने वाला ही श्रद्धा करता है। अतः निष्ठा को विशेषरूप से जानने की इच्छा करनी चाहिये।

६. यदा क्षितावेव चराचरस्य विदाम 'निष्ठां' प्रभवञ्च नित्यम्।

तन्नामतोऽन्यद् व्यवहारमूलं निरूप्यतां सत् क्रिययानुमेयम्॥ श्रीमद्भागवत ५/१२/८

अर्थ

हम देखते हैं कि सम्पूर्ण चराचर भूत सर्वदा पृथ्वी से ही उत्पन्न होते हैं और पृथ्वी में ही लीन होते हैं, अतः उनके क्रियाभेद के कारण जो अलग-अलग नाम पड़ गये हैं— बताओ तो उनके सिवा व्यवहार का और क्या मूल है?

७. भगवन्तं हरिं प्रायो न भजन्त्यात्मवित्तमाः।

तेषामशान्तकामानां का निष्ठाविजितात्मनाम्। श्रीमद्भागवत ११/५/१

अर्थ

जिनकी कामनाएँ शान्त नहीं हुई हैं, लौकिक—पारलौकिक भोगों की लालसा मिटी नहीं है और मन एवं इन्द्रियाँ भी वश में नहीं है तथा जो भगवान् का भजन भी नहीं करते, ऐसे लोगों की क्या गति होती है?

८. सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे।

समासेनैव कौन्तेय! 'निष्ठा' ज्ञानस्य या परा॥

गीता १८/५०

अर्थ

जो कि ज्ञानयोग की परानिष्ठा है, उस नैष्कर्म्य—सिद्धि को जिस प्रकार से प्राप्त होकर मनुष्य ब्रह्म को प्राप्त होता है, उस प्रकार को कुन्तीपुत्र! तू संक्षेप में ही मुझ से समझ।

प्रस्तावना

“पञ्चभौतिक महाविषय के द्वावापृथिव्यात्मक रोदसी ब्रह्माण्ड के देवसत्यमण्डल में जन्म धारण करने वाला ईश्वरीय ज्ञान—क्रिया—अर्थशक्तियों से समन्वित, अत एव प्रजापति से समतुलित, अत एव परिपूर्ण भी मानव दुःखी क्यों?” इस प्रक्रान्त प्रश्न की समाधान दिशा को लक्ष्य बना कर सर्वप्रथम कृष्णार्जुन संवाद माध्यम से ‘असदाख्यानमीमांसा’ नामक प्रथम स्तम्भ में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया कि सर्वगुण सम्पन्न भी मानव मनोऽनुगता प्रत्यक्षप्रभावमूला क्षणक्षणपरिवर्तनशीला—इच्छापन्नभावसमन्विता—भावुकता से एकमात्र भावुकता से ही दुःखी बना रहता है। ‘विश्वप्राङ्गण में आवास—निवास—विचरण करने वाला

सर्वसाधन—परिग्रह सम्पन्न भी मानव भावुकता से दुःखी है’, इस समाधान वाक्य में विश्व, भावुकता, मानव ये तीन पर्व मुख्यरूप से विजिज्ञास्य बन जाते हैं। इसी सहज जिज्ञासात्रयी के समाधान के लिए प्रस्तुत सामयिक निबन्ध में तीन स्तम्भ मुख्य मान लिये गये हैं। ‘असदाख्यानमीमांसा’ नामक प्रथमस्तम्भ वास्तव में भूमिकारूप प्राक्कथन है। इसी को आधार मानकर निबन्ध या मुख्यविषय प्रक्रान्त हुआ है। मुख्य विषयों में प्रथम स्थान उस पाञ्चभौतिक ‘विश्व’ का है, जिसके गर्भ में जिसकी विविधशक्तियों के प्रवर्ग्य भागों को भागधेय बनाता हुआ मानव स्व स्वरूप का सम्पादन करने में समर्थ होता है। अत एव तीनों मुख्य प्रतिपाद्य विषयों में से असदाख्यानमीमांसारूप प्राक्कथन के अनन्तर ही ‘विश्वस्वरूपमीमांसा’ का द्वितीयस्तम्भरूप से स्वरूपविश्लेषण करना आवश्यक समझा गया है, जिसमें मुख्यरूप से गोपथश्रुति के आधार पर ब्रह्म—सुब्रह्ममूला सृष्टि के ही तात्त्विक स्वरूप की मीमांसा हुई है।

विश्वस्वरूप मीमांसा में यह स्पष्ट करने का प्रयास हुआ है कि सम्पूर्ण विश्व अपने नामरूप कर्मभावों से सत्य ज्ञान अनन्त—नित्यविज्ञान आनन्द—घन विश्वेश्वर का ही अंश है। ऐसे सच्चिदानन्दलक्षण विश्व के गर्भ में विश्व की शक्तियों के प्रवर्ग्यभूत मानव का वास्तविक स्वरूप भी सच्चिदानन्दमय ही है। सत्ता (अस्तित्व), चेतना (विकास), आनन्द (शान्ति), तीनों मानव के स्वरूप धर्म हैं सहज धर्म है। यदि मानव विश्वानुबन्धी उपादानों की नियमितता के माध्यम से, दूसरे शब्दों में विश्वानुबन्धी प्राकृतिक नियमोपनियममाध्यम से अपना भौतिक जीवन सुव्यवस्थित बनाए रखता है, तो विश्वेश्वर की भाँति विविध उच्चावच अशान्त क्षुब्ध—गतिशील—विश्वभावों में सतत आविष्ट—प्रविष्ट रहता हुआ भी मानव अपने आप को सर्वथा शान्त—स्वस्थ—सुखी बनाए रख सकता है।

यहाँ आकर सहसा यह प्रश्न उपस्थित हो जाता है कि सर्वथा प्रकृतिसिद्ध—इस सहज शान्ति—सुख के ठीक विपरीत परिपूर्ण भी मानव प्रयास करता हुआ भी अशान्त तथा दुःखी क्यों बनता रहता है? इसी प्रश्न के समाधान के लिए हमारे सम्मुख वह ‘भावुकता’ तत्त्व समुपस्थित हो पड़ता है, जिसकी प्रतिद्वन्द्वी, किंवा सापेक्ष शब्द माना गया है ‘निष्ठा’। क्योंकि ‘भावुकता’ शब्द ‘निष्ठा’ शब्द की नित्य उसी प्रकार अपेक्षा रखता है, जैसे कि ‘प्रजा’ शब्द ‘राजा’ शब्द की। अपेक्षित है प्रधानरूप से ‘भावुकता’ तत्त्व की स्वरूपमीमांसा। किन्तु बिना सापेक्ष निष्ठातत्त्व की मीमांसा के ‘भावुकता का स्वरूपबोध सर्वथा अवगत नहीं हो सकता है। अत एव मानव के ‘वसुधान कोशात्मक’ विश्व तथा विश्वस्रष्टा विश्वेश्वर की तात्त्विक स्वरूपमीमांसा के अनन्तर ही भावुकता एवं निष्ठा हमारी जिज्ञासा का लक्ष्य बन जाता है।

भावुकता शब्द सापेक्ष निष्ठा शब्द, किंवा निष्ठा शब्द सापेक्ष भावुकता शब्द ही प्रक्रान्त तृतीयस्तम्भ के मुख्य प्रतिपाद्य विषय माने जायेंगे। ये दोनों ही शब्द परस्पर अत्यन्त विरुद्ध विविध भावाक्रान्त, अत एव नानाभाव आक्रान्त, अत एव च नित्य सापेक्ष विश्व की अपेक्षा से परस्पर अन्योऽन्याश्रित बने हुए हैं। विश्वदृष्ट्या सर्वथा अन्योऽन्याश्रित, अत एव सर्वथा सापेक्ष बने हुए इन निष्ठा—भावुकता शब्दों की

स्वरूपमीमांसा—तत्त्वस्वरूपपरिचय—क्योंकि निरपेक्ष विशुद्धनिष्ठा और भावुकता तत्त्वों पर अवलम्बित है साथ ही निरपेक्ष निष्ठा—भावुकता—तत्त्वों की स्वरूपमीमांसा क्योंकि विश्वाधारभूत—सर्वाधार—अद्वय—अखण्ड—अत्यन्तपिनद्ध—उस परात्पर परमेश्वर पर अवलम्बित है, जहाँ अणोरणीयान् तथा महतोमहीयान्, दोनों सापेक्षभाव उपरत हो जाते हैं। अतएव सापेक्ष निष्ठाभावुकताद्वन्द्वमीमांसा से पूर्व तदाधारभूत निरपेक्ष परात्परब्रह्मानुबन्धी निरपेक्ष निष्ठा—भावुकता (शुद्धनिष्ठा तथा शुद्ध भावुकता) द्वन्द्व का तटस्थ स्वरूप परिचय ही मीमांस्य बन जाता है।

विश्वातीत निरपेक्ष परात्परपरमेश्वर कैसे सापेक्ष विश्व का आधार बन गया? परात्परांशभूत विश्वेश्वर कैसे सापेक्ष विश्व का सर्जन कर विश्वगर्भ में प्रविष्ट हो गया? विश्वगर्भ में प्रविष्ट विश्वात्मा के सापेक्ष द्वन्द्वभावापन्न विश्व का क्या स्वरूप है? विश्वगर्भ में प्रतिष्ठित सर्वप्राणिज्येष्ठ—श्रेष्ठ मानवसर्ग के मूलकेन्द्रभूत हृदयस्थ अव्ययमनोमय शाश्वतब्रह्मलक्षण 'मनु' का क्या तात्त्विक स्वरूप है? इत्यादि सभी तात्त्विक प्रश्नों के समाधान के लिए यह उपनिबद्ध है। परिभाषाज्ञान के विलुप्तप्राय बन जाने से आज हमारे लिए 'निष्ठा' और 'भावुकता' जैसे विश्वविश्रुत शब्द भी अपने तात्त्विक रहस्यपूर्ण परिभाषिक अर्थ से सर्वथा परोक्ष हो गए हैं। अतएव वर्तमानयुग के निगमनिष्ठाज्ञानलववञ्चित विशुद्धभावुक यथाजात मानवों की दृष्टि में 'निष्ठा—भावुकता' जैसी शास्त्रीय मीमांसा भी आज अज्ञान के कारण से सर्वथा तर्क—शक्ति—प्रमाणशून्या कल्पित आलोचना प्रत्यालोचना का विषय बनी हुई है।

विशुद्ध भावुक मानव की दुःखानुगता विविध—समस्यापरम्पराओं के समाधान के लिए प्रज्ञाशील विद्वानों की ओर से जो जो समाधानाभास होते रहे हैं, उन समाधान परम्पराओं के साथ हमारे इस सर्वथा नवीन, नहीं नहीं ऐकान्तिक प्रत्न (पुरातन) नैगमिक निष्ठाभावुकताद्वन्द्व का कथमपि समन्वय सम्भव नहीं है जिस प्रकार निगमाम्नायपरम्परा से अनुप्राणित अन्यान्य रहस्यपूर्ण तत्त्ववाद निगमाध्ययनाध्ययन परम्पराकी विलुप्ति से विलुप्त प्राय बन चुका है तथैव निगमानुमोदित निष्ठा—भावुकता—तत्त्ववादात्मक रहस्यपूर्ण तात्त्विक समाधान भी विगत शताब्दियों से स्मृतिगर्भ में ही विलीन हो रहा है। यही कारण है कि मानव की महत्त्वपूर्ण समस्याओं के अन्यतम समाधानरूप निष्ठा—भावुकता—द्वन्द्व की जिन नैगमिक इत्थंभूता परिभाषाओं का प्रस्तुत निबन्ध में स्पष्टीकरण हो रहा है, उस पर सर्वसामान्य की कौन कहे, विद्वानों की भी सहसा आस्था इसलिए सम्भव नहीं है क्योंकि उनका दृष्टिकोण नैगमिक पारिभाषिक अध्ययनाध्यापनपरम्परा से पराः परावत प्रमाणित हो चुका है। विगत कतिपय शताब्दियों में तथा वर्तमान प्रक्रान्त शताब्दी में भारतीय विद्वानों की ओर से सन्तमताक्रान्तासम्प्रदायवादानुगता—अतएव अधिकांश में भावुकतापूर्णा गतानुगतिकतासमन्विता जिस प्रज्ञा के माध्यम से मानवीय—समस्या—समाधान के लिए जो समाधान—परम्परा लिपिबद्ध हुई है, उसमें निष्ठा—भावुकता के नैगमिकस्वरूप का ऐकान्तिक अभाव सा ही रहा है। इसी आधार पर हमें यह निवेदन

करना पड़ रहा है कि प्रस्तुत तृतीय स्तम्भ में निष्ठा—भावुकता—शब्दों की जो स्वरूपमीमांसा होने वाली है, वह सर्वथा अपरिचित सी नूतन सी ही प्रतीत होगी।

निष्ठा और भावुकता, दोनों ही शब्द शास्त्रीय तथा लौकिक भेद से विभिन्न दो दृष्टिकोणों के माध्यम से प्रस्तुत निबन्ध में मीमांस्य माने जायेंगे। शास्त्रीय दृष्टिकोण से सम्बद्धा मीमांसा एक स्वतन्त्र दृष्टिकोण माना जायेगा एवं लौकिक दृष्टिकोण से अनुप्राणिता मीमांसा विभिन्नदृष्टिकोण माना जाएगा। यद्यपि तत्त्वदृष्ट्या इन दोनों विभिन्न भी दृष्टिकोणों में अन्ततोगत्वा सर्वथा निर्विरोध समन्वय हो जाता है। तथापि लोकदृष्ट्या दोनों दृष्टिकोणों में विभेद—सा प्रतीत होता है।

आप्तोपदेशः शब्दः शब्दप्रमाणका वयम्। यदस्माकं शब्द आह तदस्माकं प्रमाणम्।' इत्यादि मान्यता के अनुसार निष्ठा और भावुकता—तत्त्वों के सम्बन्ध में भी आप्तप्रमाणभक्त—यथोद्देशपक्षानुगामी एक शास्त्रभक्त आस्तिक भारतीय मानव के लिए यह जिज्ञासा सर्वथा सहज बनी हुई है कि— 'निष्ठा—की इत्थंभूता व्याख्या—मीमांसा किंवा दृष्टिकोण में प्रमाण क्या?' यद्यपि प्रमाण स्वयं तत्त्वमीमांसा ही पर्याप्त है। तथापि शब्दप्रामाण्यास्था के माध्यम से यहाँ कतिपय वैसे आप्त प्रमाण भी समुपस्थित कर देना अनिवार्यरूपेण आवश्यक है, जिन आप्तवचनों के द्वारा विस्पष्ट रूप से निष्ठा—भावुकताशब्दों की इत्थंभूता भावाभिव्यक्ति स्पष्टरूपेण प्रमाणित हो रही है। प्रमाण अधिकांश में नैगमिक है। मीमांसाशास्त्रसम्मत उपक्रमोपसंहारादि नियम—पद्धति के अनुरूप प्रमाणों के अर्थसमन्वय के माध्यम से प्रज्ञाशील पाठक स्वयं ही इस निष्कर्ष पर अवश्य पहुँच जायँगे कि—वास्तव में निष्ठाभावुकताद्वन्द्व की इत्थंभूता अर्थसङ्गति ही शास्त्रसम्मता, अतएव प्रमाणनिबन्धना—अतएव च ऐकान्तिकरूपेण उपयोगिनी है।

(क) 'निष्ठा' शब्दानुगत आप्तवचन—

१. कः स्विद् वृक्षो 'निष्ठितो' मध्ये अर्णसो यं तौग्र्यो नाधितः पर्य्यषस्वजत्।

पर्णामृगस्य पतरोरिवारभ उदश्विना ऊहथुः श्रोमताय कम्॥ ऋक्संहिता १/१८३/७

'सुप्रसिद्ध' रोदसी त्रिलोकी को अपने महिमामण्डल के गर्भ में रखने वाले 'अर्णव' नामक समुद्र के गर्भ (केन्द्र) में प्रतिष्ठित निश्चलरूप से स्थित वृक्ष (अश्वत्थवृक्षात्मक सूर्य) की तुग्र के पुत्र भुज्यु महाभाग ने आराधना की है। जिस प्रकार हिंस्रक व्याध के आक्रमण से भयत्रस्त बने हुए पतनोन्मुख मृग को वृक्षपल्लव संभाल लेते हैं। तथैव यह वृक्षात्मक सूर्य, किंवा सूर्यात्मक वृक्ष सम्पूर्ण रोदसी त्रिलोकी की पतनोन्मुखा प्रजा का संरक्षण करता रहता है। यशस्वी यशः कामुक पुरुषार्थी मानव के लिए प्रातर्य्यावाण देवता अश्विनीकुमार इस (उद्यन्) सूर्यात्मक वृक्ष को सदा समुन्नत रखते हैं।

उक्त मन्त्र में पठित 'निष्ठितः' और वृक्षः ये दो शब्दविशेष रूप से अवधेय हैं। मन्त्र ने "अश्वत्थवृक्ष" रूप से सूर्योपासना की ओर ही हमारा ध्यान आकर्षित किया है। सहस्रपुण्डरीरात्मक प्राजापत्यबल्शा समन्वित त्रैलोक्य त्रिलोकी में व्याप्त विश्वेश्वर विश्वात्मा ही वह 'वृक्ष' है, जिसका निम्नलिखितश्रुति से स्पष्टीकरण हुआ है—

२. "यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चित्—यस्मान्नाणीयो न ज्यायोस्ति कश्चित्।

वृक्ष इव स्तब्धो दिवितिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्॥"श्वेताश्वतरोपनिषत् ३/९

अश्वत्थवृक्षात्मक विश्वात्मा अपने 'अनेजत्' भाव से स्थितिलक्षणरक्षापेक्षया सर्वथा स्थिर है, स्तब्ध है, कम्पन रहित है। इस कम्पन रहित महावृक्ष में संयती, क्रन्दसी रोदसी नामक तीन त्रैलोक्य व्यवस्थित हैं तीनों के स्वरूप सम्पादक क्रमशः नभस्वान्—सरस्वान्—अर्णव तीन समुद्र हैं। इनमें रोदसी त्रिलोकी के अधिष्ठाता अर्णव समुद्र के केन्द्र में 'अपां गंभनसीद' के अनुसार सहस्रांशु सूर्यप्रतिष्ठित है। सूर्यविश्व के केन्द्र में प्रतिष्ठित है जैसा कि 'आदित्यो वै विश्वस्य हृदयम्।' इत्यादि निगमवचन से प्रमाणित है। 'नैवोदेता, नास्तमेता, मध्ये एकल एव स्थाता' 'सूर्यो बृहतीमध्यूढस्तपति' इत्यादि अन्य वचन भी इसी ब्रह्माण्डकेन्द्रस्थ सूर्य के स्थितिभाव का समर्थन कर रहे हैं। केन्द्र ही विज्ञानभाषा में 'ऊर्ध्व' कहलाता है। अश्वत्थवृक्षात्मक महाविश्व का केन्द्र क्योंकि सूर्य ही है। अत एव 'ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः' इत्यादि औपनिषद सिद्धान्तानुसार सूर्य ही वृक्ष का मूलस्थान प्रमाणित हो रहा है अत एव केन्द्रस्थ सूर्य को ऋक्श्रुति ने प्रतीकविधा से विश्वव्यापक अश्वत्थब्रह्म की प्रतिकृति मान लिया है। अपने केन्द्रस्थ अविचालीभाव से वृक्षात्मक सूर्य 'निष्ठात्मक' है। 'धियो यो नः प्रचोदयात्' रूप से बुद्धिसूर्यात्मिका है। फलतः अध्यात्मसंस्था में सौरी बुद्धि का निष्ठात्व प्रमाणित हो जाता है। आधिदैविकसंस्था में सूर्य 'निष्ठा' रूप है तो अध्यात्मसंस्था में 'बुद्धि' निष्ठा लक्षणा है, यही निष्कर्ष है। सर्वश्रीसायण ने 'नितरां स्थितिः' निर्वचन के आधार पर ही 'मन्त्रोपात्त' 'निष्ठितः' का अर्थ किया है—'निश्चलं वर्तमानः' तात्पर्य, प्रकृतमन्त्र में अविचाली—स्थिर—अविकम्पित भाव के लिए ही निष्ठाभिव्यञ्जक 'निष्ठितः' शब्द प्रयुक्त हुआ है।

क्रमशः